International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 21-02-2024, Accepted: 14-03-2024, Published: 05-04-2024
Volume 10, Issue 2, 2024, Page No. 4-7

कुमाउनी साहित्य में अभिव्यक्त समसामयिक राजनीतिक परिदृश्य

गिरीश चन्द्र
अस्सिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय तल्ला सल्ट, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश
कुमाउनी साहित्यकारों ने अपने काव्य एवं गद्य के माध्यम से सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना जागृत करने का सफल प्रयास किया है। कुमाउनी रचनाकारों ने अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका को समझते हुए, साहित्य के माध्यम से स्थानीय निवासियों को अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति जागरुक करने का प्रयास किया है। भूमंडलीकरण एवं उपभोक्तावाद की इस जीवनशैली ने मानवीय व्यवहार में अनेक परिवर्तन किए हैं। संचार तकनीकी एवं इंटरनेट के अधिकाधिक प्रयोग ने समाजीकरण की प्रक्रिया को काफी हद तक प्रभावित किया है। कुमाउनी साहित्य में राजनीतिक एवं शासन–प्रशासन की विद्रूपदाओं के विरोध में आक्रोश दिखाई देता है। कुमाउनी साहित्य में सामान्य जनमानस के लिए नैतिकता, सहानुभूति व जागरुकता का भाव तथा मजदूर व गरीब वर्ग के लिए सहयोग व समानता का भाव सर्वत्र दिखाई देता है।

मूल शब्दः राजनीतिक चेतना, जागृत, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, समाजीकरण, आक्रोश, सहानुभूति, जागरुकता, साम्प्रदायिकता, एकाकीपन, रूढ़िवादिता, विश्वबन्धुत्व, सौहार्द, न्यौछावर, पलायन, स्वाभिमान, बर्बरता, आदर्शात्मकता, बुलंद, उन्नति, सेवक, अस्तित्व, आत्मनिर्भर।

मानव एक ओर तो दिन–रात मेहनत करके विकास की उत्तरोत्तर दिशा में बढ़ रहा है। वहीं दूसरी ओर समाज में साम्प्रदायिकता एवं वर्ग भेद की समस्या भी दिनोंदिन अपने पैर पसार रही है। विकास के विभिन्न तकनीकी आयामों द्वारा हम एक ओर भौगोलिक एवं भौतिक दूरी को कम करने में लगे हैं, जबकि दूसरी ओर मानव से मानव आंतरिक रूप से दूर होकर निराशा, चिंता, तनाव एवं एकाकीपन में रहने को मजबूर हो रहा है। एक ओर समाज में महिला पुरुष के कंधे–से कंधा मिलाकर चल रही है तो दूसरी ओर अज्ञानता, अशिक्षा या फिर रूढ़िवादिता के वशीभूत गर्भ में ही कन्या–भ्रूण की हत्या कर दी जाती है। समाज में नारी को देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जबकि वास्तव में नारी के साथ भेदभाव, बलात्कार, दहेज–हत्या आदि अमानवीय कुकृत्य बढ़ते जा रहे हैं। समाज का एक वर्ग नैतिकता, शांति, धर्म और विज्ञान को जोड़कर विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार कर रहा है, जबकि दूसरा मानसिक विकृति से ग्रसित वर्ग समाज में गुंडागर्दी, चोरी, डाँका, हिंसा तथा आंतकी घटनाओं को अंजाम देकर सामाजिक सौहार्द को ठेस पहुँचा रहा है। एक ओर राष्ट्रीय भावना व देशप्रेम से ओत–प्रोत भारत माँ की रक्षा तथा उसकी समृद्धि के सच्चे देशभक्त, चितंक एवं वीर सैनिक प्राण न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते हैं, तो वहीं दूसरी ओर अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए राष्ट्रहित की बलि चढ़ाने वालों की भी कमी नहीं है। परंतु कुमाऊँ के जागृत साहित्यकारों ने उपरोक्त गंभीर सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों व विषमताओं को साहित्य के माध्यम से समाज की आवाज बनाना आरंभ कर दिया है। समाज में व्याप्त भाई भतीजावाद व धन–केन्द्रित जीवन शैली के दुष्परिणामों पर भी कुमाउनी साहित्यकारों ने खूब प्रहार किया है।

आरंभिक कुमाऊँ में गोरखाओं का क्रूर शासन रहा और उसी गोरखा शासन की निर्ममता और उनकी अनीतिपूर्ण शासन व्यवस्था का वर्णन 'गुमानी' जी की कविता 'गोर्खालि राज' में हुआ है। प्रतिदिन खजाने का भार ढोते–ढोते किसी की चोटी में बाल नहीं बचे, सब बाल उखड़ गए, फिर भी यहाँ के लोगों ने पलायन नहीं किया, कवि ने गोरखाओं के इन्हीं जुल्मों के विषय में लिखा है–

"दिन–दिन खजाना का भार बोकणा ले,
शिव! शिव!! चुलि में का बाल नै एक कैका।
तदपि मुलुक तेरो छोड़ि न कोई भाजा,
इति वदति 'गुमानी' धन्य गोरखाली राजा।।"[1]

जनकवि 'गौर्दा' ने 'कुली बेगार प्रथा' के विरोध में कविता लिखी। 'हमरो कुमाऊँ' नामक कविता में वे कुमाऊँवासी होने पर गर्व महसूस करते हुए कुमाऊँवासियों के जातिगत स्वाभिमान को कहकर व्यक्त करते हैं–

"ऊँचा में रयाँ ऊँचा छियाँ हम, नी छियाँ क्वे ले अनाड़ी'
हमरो कुमाऊँ हम छौं कुमय्या, हमरी सब खेती बाड़ी।
तराई भाबर बणकोट घट–गाड़, हमरा छ पहाड़, पहाड़ी।।"[2]

उत्तरांचल राज्य आंदोलन के दौरान शासन–प्रशासन व पुलिस प्रशासन की ज्यादतियों एवं पुलिस की गोलियों से निर्दोष, निहत्थे लोगों की मौत। खटीमा–मसूरी गोलीकांड, मुजफ्फरनगर में उत्तरांचली माताओं–बहिनों के साथ हुई ज्यादत्तियों एवं बर्बरता के खिलाफ कविवर गिरीश तिवाड़ी 'गिर्दा' का आक्रोश उनके कुमाउंनी काव्य–संग्रह 'उत्तराखण्ड काव्य'(2002) के 'बागस्यौरौक गीत' नामक रचना में प्रस्फुटित हुआ है। जिसमें उन्होंने बागेश्वर में बहनेवाली सरयू–गोमती नदियों के जल से गंगाजली उठाकर पृथक उत्तराखण्ड राज्य लेकर रहने की कसम खाई–

"सरजु–गोमती संगम में गंगाजली उठूँलो,
उत्तराखंड ल्ह्यूँलो भुलू! उत्तराखँड ल्हयूँलो।
बागस्याराक बगड़ में हिटौ वैं फैसाल करूँलो,
उत्तराखंड ल्हयूँलों बैणी! उत्तराखंड ल्हूयूलो।।"[3]

कवि गोपालदत्त भट्ट के काव्य–संकलन 'धर्तिक पीड़' के प्रथम भाग में देशभक्ति, राष्ट्रीयता और सामाजिक चेतनापरक कविताएँ लिखीं हैं। जिनमें आदर्शात्मकता भी है। कवि देश के कर्णधारों से आजादी की नाव को सँभाल कर ले जाने का अनुरोध करता है–

"सनसनाट आनि भुई को छू, बादौ कावो उरीणौ
अन्यार भैर छू, गंग गैर छू–कत्थ ठीक अद्यखीणौ
खेवटा मणि नाव समइ बे ल्हिजे.....,
डाना बै औणे बयाव विषैली, मुणी सरकणी स्याप,
मुखड़ि सुकै नि दियो देश की, कें यो निगुरी राप
खेवटा मणि नाव समइ बे ल्हिजे...।।"[4]

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वोटों की राजनीति में महत्वपूर्ण मामले हाशिये में चले जाते हैं। चुनाव जीतने के लिए नेता तरह–तरह की असंगत एवं मिथ्या घोषणाएँ करके जनता को बरगलाकर या धन के लालच में बहला–फुसलाकर वोट तो हथिया लेते हैं, लेकिन उसके बाद जनता की ओर पीठ फेर लेते हैं। 'शेरदा अनपढ़' ऐसे मिथ्याभाषी नेताओं की कलई खोलने से भी बाज नहीं आते। अपनी कविता 'फस्की यार' में चुटीले व तीखे व्यंग्यों से उनकी असलियत को सबके समक्ष नग्न रूप में प्रस्तुत कर देते हैं–

"नेताज्यू बोटैकि ओट में चटणि चटै गईं।
यौ–ऊ मिलौल कै सौ गिन्ती रटै गई।
जो हम निमूल कूँछी हमरि पेटै आग
और जै अनाड़ ऊँ हमार ततै गईं।
कान में हाथ धरि कूँछी हमैं छाँ तुमार
तौ तुमरि दिल्ली में ऊँ हमार हरै गईं।।"[5]

वर्तमान राजनीति माहौल में हर कोई अपनी जै–जैकार सुनना चाहता है। हमारे देश–प्रदेश दोनों की राजनीति मात्र जै–जैकार तक ही सिमट कर रही गई है। इस जै–जैकार में उन्हें आम जनता की पीड़ा महसूस नहीं हो पाती। आज ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो आज के नेताओं–मंत्रियों की आँखों में आँखे डालकर सवाल–जवाब कर सके। यदि कोई ऐसा करता भी है तो नेता जी से दुश्मनी हो जाती है। इस बात को लेकर महेन्द्र महरा जी लिखते हैं–

"ल्हिण दिण में टिकी जो मधु,
रिस्तोंक बाजार कब तक।
अब तो आँख मिलै बे जबाब माँगो,
सिर्फ जै–जैकार कब तक।।"[6]

जागरुकता की यह लड़ाई चलती रहनी चाहिए। हर युग में हर समाज में जागरुक लोग अपने हक की लड़ाई लड़ते रहे हैं, तभी आज हम स्वतन्त्र माहौल में साँस ले रहे हैं। महेन्द्र सिंह महरा 'मधु' की गजलों में 'इंकलाब जिंदाबाद' का जो स्वर बुलंद हुआ है, निश्चित रूप से वह भावी पीढ़ी का मार्गदर्शन करने में सहायक सिद्ध होगा। अब तक श्रृंगार आदि से संबन्धित कई रचनाएँ हो चुकी हैं, परंतु अब इन बंधनों से मुक्ति पाने के लिए 'मधु' जी जिखते हैं–

"फिर उठूनू कलम चलो ख्वाब लिखनू,
जमीन पर फिर आज इन्कलाब लिखनू।
जाणि है मधु त्यर शातिर चालों कैं अब,
अब तो मैं हर जुल्मक हिसाब लिखनू।।"[7]

हम लोगों ने सोचा था कि 15 अगस्त 1947 ई0 को देश आजाद हो गया था। हम स्वतंत्र रूप से जीवन यापन कर सकेंगे और उन्नति की ओर अग्रसर होंगे। परन्तु आज भी सरकारी राजकाज की व्यवस्था को देखते हुए कवि जगदीश जोशी जी ने अपनी कविता 'ढडुवौ ध्यान' में आजकल के स्वार्थी नेताओं को अंग्रेजों के समान ही अत्याचारी माना है–

"सोच छि कुकुड़ बासिगो, काठ कठुलि रात ब्यालि,
सुरज चमकौल हौल फटोल तुष्यार बिलाल।
कैल सोच रैछि कठुलि राताक,
प्वाथ लै कठुवा निकवाल।।"[8]

हमारे नेता वोट माँगते वक्त साम, दाम, दण्ड, भेद अपनाकर हर संभव प्रयास से भोली जनता से वोट ठग लेते हैं, परंतु जीतने के बाद अगले पाँच साल फिर गायब हो जाते हैं। चुनाव में फिर उसी जनता को याद करते हैं और जनता का सेवक होने का ढोंग करते हैं। इसी बात पर व्यंग्य करते हुए श्री महेन्द्र सिंह मटियानी जी कहते हैं–

"पाँच साल में एक्कै बखत बगूँ,
हमार स्यार हूँ उनरि कृपा दृष्टिक कुल।
फुस्यर बलू इचाव–निसौड़,
कुरिक जंगव बणी।
मुश्किलल् सी भरिक बची–
तुमार विकासाक् हाङ, हमार नसीब है गई।।"[9]

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय बुद्धिजीवियों ने शासन–प्रणाली को दुरुस्त करने के उद्देश्य से संविधान का निर्माण किया। ताकि जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता के सेवक चुने जाएँ, किंतु आज राजनीति केवल स्वार्थलोलुपता और सत्ता पाने की लालसा मात्र बनकर रह गई है। इस बात की ओर संकेत करते हुए 'शेरदा अनपढ़' अपनी रचना 'ओ रे कुर्सी बातै बात' में कहते हैं–

"ओ रे कुर्सी बातै बात, बात–बात में जात–पात
कै कैं दिछै दूध–भात, कै हूँ करछै सौति हात
त्वील हमुकैं लड़ै मारौ, त्वील हमुकैं भड़यै मारौ।।"[10]

वर्तमान में खुद को जनता का सेवक कहने वाले नेता जनता की समस्याओं को सुनते तो हैं परंतु एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं और जनता को व्यर्थ के प्रलोभनों में उलझाए रखते हैं। इसी बात की ओर इशारा करते हुए प्रो0 शेर सिंह बिष्ट जी अपने कुमाउनी काव्य–संग्रह 'भारत माता' की 'भाषणोंक आफर' रचना में लिखते हैं–

"सुणि बैर लै कालै रया,
देखि बैर लै काणै रया।
गद्दि–बत्ति लाल लि बेर लै,
दीन–दुखिन भबरयूणे रया!
समस्या सदा बणिये रौ,
हतियार हात में धरिये रौ।
जनता दरबार लागिये रौ,
पूछ–गछ सदा होते रौ।"[11]

आज हमारे देश–प्रदेश में अनेक समस्याएँ व्याप्त हैं। जनसामान्य को मूल सुविधाएँ भी मुश्किल से ही प्राप्त हो पा रहीं हैं। कृषि कार्य के लिए नहरें और यातायात के लिए सड़कों का बुरा हाल है। इन समस्याओं को चुनाव के समय ही हमारे नेता हल करने की बात करते हैं, परंतु बाद में भूल जाते हैं। इस विडंबना को लेकर प्रो0 शेर सिंह बिष्ट जी कहते हैं–

"विकास! विकास! विकास!,चौतरफ विकास!
गजबजी जैं जनता,गौं उज्याणि कै चौं जब जनता,–
नल पाणिक उताण है रईं, क्वे ठाङर जै ठाड़ है रईं
डिग्गी पुराणि खन्यारी रै, सड़क स्यापकि काचुइ है रै
इस्कोलोंकि छत फट्याव लगूणै,

बिल्डिंग भूत–बंग्याल है रै।।"[12]

आज हमारे लोकतंत्र की यह दुर्दशा ही है कि सत्ता प्राप्त करने के लिए नेता व उनकी पार्टियाँ किसी भी हद तक जाने को तैयार रहते हैं। उनका मानना है कि सत्ता प्राप्त हो जाने पर सारे दुःख–दर्द दूर हो जाएँगे, धन–दौलत, कार–बंगला इत्यादि सभी भोगविलास की वस्तुएँ प्राप्त हो जाएंगी। इसी राजनीतिक भोगवादी विलासिता पर तंज कसते हुए श्री जगदीश चन्द्र जोशी जी अपनी रचना 'कुर्सि और मैं' में लिखते हैं–

"राज पाट मिली जाल,
जो बरदान बरमा लै नि दि सकन,
उ सब कुर्सि परसाद मिलि जाल
कार, बड्.याल, बैंक बिलेन्स,
बान, बोतव–सब चुटकि में
म्यार सामणि नाक घोसाल।।"[13]

वर्तमान राजनीति का सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है यहाँ अनपढ़ अँगूठाछाप व्यक्ति भी धनबल व जनबल का प्रयोग करके नेता बन जाता है और फिर अपने व्यय किए गए पैसे का कई गुना हेरफेर करके वसूलते है, इस बात को श्री त्रिभुवन गिरी जी स्पष्ट करते हैं–

"पढ़ण लेखण पाप,
नेता घुत्ती छाप–गधा कैं बड़ौ बाप,
ल्हिलै नोट, फिर दे बोट, के नि भै खोट..,
सिपावै–सिपाव करि गई घिपाव
के इचाव् के निसाव।।"[14]

आज के नेता एक–दूसरे राजनीतिक दलों व उनके नेताओं की कमजोरियों को उजागर करते तो हैं, परंतु खुद भी समस्याओं को मात्र चुनाव के समय ही कहकर फिर भूल जाते हैं। इस प्रवृत्ति पर प्रसिद्ध जनकवि गिरीश तिवारी 'गिर्दा' बतातें हैं कि ये नेता लोग जनता के भले के लिए चुने जाते हैं, लेकिन ये जनता को ही लूटने में लग जाते हैं–

"सारे देश में त्राहि–त्राहि हैरै छौ
वी कै बैलेट में भुनै गयो रे
अबीर लगाला कैं मुनलो जै देछी
खोरि में जाँठा बरसै गयौ रै।।"[15]

आज जनता अपने सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरुक व गंभीर है। इसलिए अनेक संगठन बनाए जाते हैं। परंतु दूसरी तरफ ऐसे अनगिनत संगठन बना दिए गए हैं, जिनके मुद्दे लोक–हितकारी कम और स्वार्थी ज्यादा लगते हैं। वे समाज को भटकाने का कार्य करते हैं। उनका उद्देश्य अपना प्रचार–प्रसार करना ही रहता है। जिसके परिणामस्वरूप जनता को फायदा कम और नुकसान ज्यादा झेलना पड़ता है। इस बात पर किरमोलिया जी अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखते हैं–

"बुत धाण सबै हरै गीं–आंदोलनोंक जोर,
कब तक यसै हनै रौल– कब तक चलती जोर।।"[16]

प्रत्येक सरकार की अधिकतम अवधि पाँच साल होती है। इन पाँच सालों में नेताओं को अपने घर भरने से ही फुर्सत नहीं मिलती। फिर वो पाँच साल बीतने पर जनता से खुद को एक मौका और देने की अपील करते हैं–

"पै रे ऽ ऽ ऽ सौकार.....
त्यार पुर्खनक थोपी सत पुस्तक पुजी
मैं फिरि पाँच साल तक
त्वी कै आँचवैकि छाय, झाँकरैकि ओट द्यूँल।
तु मि कैं वोट दे, मैं त्वकैं चोट द्यूँल।"[17]

लोकतांत्रिक राजनीति व्यवस्था इतनी खामियों के बाद भी शासन–प्रशासन की लोकप्रिय प्रणाली समझी जाती है। कोई कितना ताकतवर या पैसे वाला क्यों न हो, उसे दोबारा सत्ता में आने के लिए पुनः जनता के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता है। जनता उसके पिछले पाँच सालों के रिकॉर्ड के अनुसार ही अपना मत प्रदान करती है। तात्पर्य है कि जनता ही सर्वशक्तिशाली है। इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए 'जिया क्वीड़' नामक काव्य–संग्रह के 'जनताकि अदालत' कविता में डॉ0 हेमचन्द्र दुबे 'उत्तर' जी लिखते हैं–

"जनता की अदालत ठुलि हैंछा
वीक बात सबै मानिन छना
क्वै विरोधा कसि करूँ
जनता जनार्दिना धना–धना।
जैकि जाँठ वैक भैंस
बिन गोरू बाछि नीन आछि
क्वे उसी कैले ठुल बड़ि जाँ
जनता बीच में पुजि
जनार्दन उ है जाँ।।"[18]

वर्षों संघर्ष के बाद क्रांतिकारियों के अथक प्रयासों के फलस्वरूप स्वतंत्रता की आस लिए भारतीयों को स्वतंत्रता तो मिल गई किंतु समाज के निम्न वर्ग की स्थिति दयनीय थी। इस स्थिति को देखते हुए शेरदा 'अनपढ़' जी अपनी रचना 'यौ भल स्वराज भै' में लिखते हैं–

"सेठ, सौकार, अफसर, लीडर
खुशी मनूँनई, लेक्चर झाड़नई, त्यार खानईं,
क्वे रम, शराब, बरंडी, ह्विस्की
क्वे आन–कुकुड़, शिकार खानई
पर गरीबों नानतिक आज लै घरोंपन
टुकुड़–टुकुड़ बिना डाड़ मारनई।।"[19]

समय के साथ–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिवर्तन होते रहते हैं। कभी–कभी ये परिवर्तन इतने विनाषकारी हो जाते हैं कि हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। इस बात को प्रस्तुत करते हुए श्री गोपालदत्त भट्ट जी अपनी कविता 'मैंसक मौ' में लिखते हैं–

"देशक् नक्श पर बटिक, पोछीणई गों,
गौंनू में बटी मेंटीणौ मैसक नौ।
गौनूक–होई–दिवाई, ब्या–बरपन, रंग–त्यार,
ल्वेक नात–गिरबि धरि ल्हिगेई, राजनीतिक–सोंकार।।"[20]

कविवर मथुरादत्त मठपाल जी की रचनाएँ मनुष्य को परतंत्रता से उभारने और आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रेरित करती हैं। उन्होंने समकालीन राजनीतिक व्यवस्था को नई दृष्टि से परखा है। एक अन्य कविता में वर्तमान राजनीति में व्याप्त भाई–भतीजावाद पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं–

"अपण और अपणा लिजी राज न करौ
हमार लिजी खाली बात नै करौ

तुम भया यार गौं–गाड़ा मुख्त्यार
च घड़ि हमर उज्याणि ल चाऔ यार।।"[21]

आज भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि राजनीति में राजनेता जनता को जातिगत क्षेत्रवाद आदि जैसे मुद्दों पर आपस में उलझाए रखते हैं। ऐसे में इस स्थिति से बाहर निकलने के लिए डॉ0 शेर सिंह बिष्ट जी अपनी 'उचौण' नामक कविता में भगवान शिव की प्रार्थना करते हुए कहते हैं–

"भुती रईं एक–दूसार हैं, मैंस मारण हैगो जस खेल
टुकुड़ोकि तैं कुकुर हैगीं, भरी गो विभीषणोंलि देश;
स्वाभिमानी हरै गईं, लागि रौ इमान बेचणक रोग
विदेशियोंकि चारि लुटणईं देश कैं, याँकै सफेद पोश।।"[22]

आज समूचे राष्ट्र में राजनीति इतनी दूषित हो गई है कि संसद में लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए संविधान के साथ छेड़छाड़ करते रहते हैं। आए दिन नए–नए कानून बनते–बिगड़ते रहते हैं। भले ही जनता के लिए उनकी प्रासंगिकता हो या चाहे न हो। इस बात को श्री बालम सिंह जनौटी जी अपनी कविता 'संविधानकि पीड़' में व्यक्त करते हैं–

"मी संविधान छूँ, उमरक ज्वान–जमान छूँ,
एक बखत नैं बार बखत,
चिरि–फाड़ि–सिणि–बख्यै–टँक्यै हैलो म्यर आंङ,
फोड़ी–खचोरी आँख–कान, टोड़ी–फतोड़ी टाङ छूँ,
मी भारतक संविधान छूँ।।"[23]

ग्रामीण परिवेश के लोगों को सीधा सरल स्वभाव का माना जाता है। इसी बात का फायदा उठा कर राजनेता उन्हें बहला फुसलाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। यही दोहरा चरित्र जनता को अँधेरे में रखता है। जिसका चित्रण श्री बहादुर बोरा 'श्रीबंधु' जी की रचना 'आजि ले नि भै धौअ' में किया गया है–

"तुमलि बड़ि–बड़ि योजना बणाई,
गरीबनै–कि गरीबी मिटूँण हूँ।
मुलुक कैं विकासक बाट दिखूँण हूँ।
गरीबी निं मिटि, गरीब मिट ग्यौ,
विकास अमीरनैकि कोठी–गोठी ग्यो।।"[24]

निष्कर्ष

कुमाउनी साहित्यकारों ने देश–प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था का गहन अध्ययन करके अपने काव्य का विषय बनाया है। कुमाउनी कवियों ने समकालीन राजनीति के हर पहलू पर अपनी लेखनी चलायी है। उनके काव्य को देखकर लगता है कि वे चाहते हैं कि यहाँ की जनता में राजनीतिक चेतना का प्रसार–प्रचार हो, माध्यम चाहे किसी भी तरह का हो। यहाँ के कवि राजनीति के वर्तमान परिदृश्य में सुधारक भूमिका का निर्वाह भी करते हैं। काव्य के माध्यम से जनता में नई चेतना प्रवाहित हो ऐसा इनका प्रयास रहा है। वर्तमान राजनीति को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलुओं पर परखते हुए कुमाउनी साहित्य जनसाधारण के लिए नवीन चेतना प्रदान करने वाला है।

सन्दर्भ सूची

1. कुमाउनी काव्य संचयन, सं0 प्रो0 चन्द्रकला रावत, पृ0सं0 07
2. वही, पृ0सं0 09
3. वही, पृ0सं0 20
4. कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, देवसिंह पोखरिया, पृ0सं0 114
5. कुमाउनी काव्य संचयन, सं0 प्रो0 चन्द्रकला रावत, पृ0सं0 48
6. वही, पृ0सं0 21
7. वही, पृ0सं0 25
8. चाँदि और सुनार, जगदीश जोशी, पृ0सं0 70
9. हिया रे उदास किलै, महेन्द्र सिंह मटियानी, पृ0सं0 05
10. शेरदा समग्र, प्रो0 शेरसिंह बिष्ट, पृ0सं0 294
11. भारत माता, प्रो0 शेरसिंह बिष्ट, पृ0सं0 38
12. उचौण, प्रो0 शेरसिंह बिष्ट, पृ0सं0 84
13. चाँदि और सुनार, जगदीश जोशी, पृ0सं0 74
14. भेट, त्रिभुवन गिरी, पृ0सं0 120
15. गिर्दा के जनगीत, पृ0सं0 02
16. आपण–आपण रत्थ, रतन सिंह किरमोलिया, पृ0सं0 13
17. हिया रे उदास किले, महेन्द्र सिंह मटियानी, पृ0सं0 10
18. जिया क्वीड़, हेमचन्द्र दुबे 'उत्तर', पृ0सं0 50
19. शेरदा अनपढ़ संचयन, प्रो0 शेरसिंह बिष्ट, पृ0सं0 66
20. धर्तिक पीड़, गोपालदत्त भट्ट, पृ0सं0 21
21. पै मैं क्यापक–क्याप कै भैटनूं, मथुरादत्त मठपाल, पृ0सं0 18
22. उचौण, प्रो0 शेरसिंह बिष्ट, पृ0सं0 115
23. कुमाउनी काव्य संचयन, सं0 प्रो0 चन्द्रकला रावत, पृ0सं0 86
24. डाँडा काँठा स्वर, डा0 गजेन्द्र बटरोही, पृ0सं0 62